कल्पवृक्ष

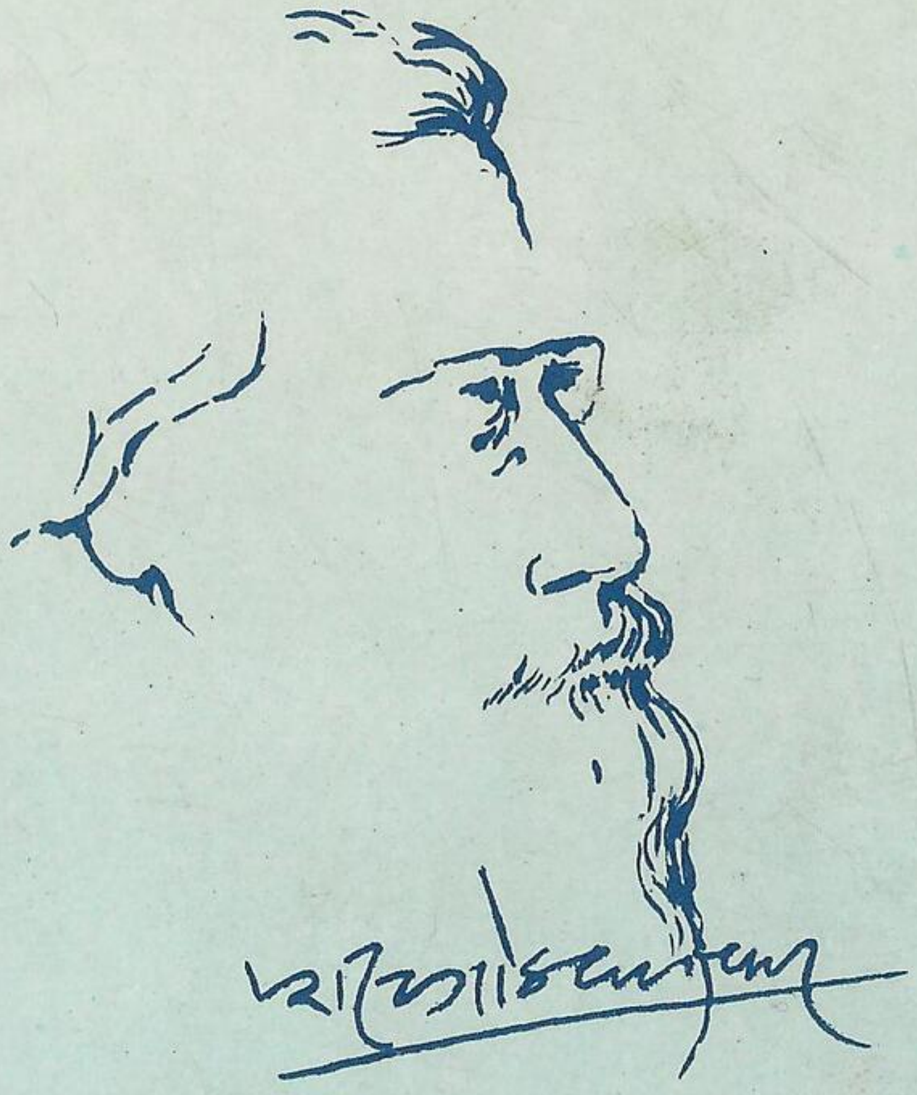

मा० स० गोलवलकर 'श्री गुरुजी'

मा० स० गोलवलकर 'श्री गुरुजी'

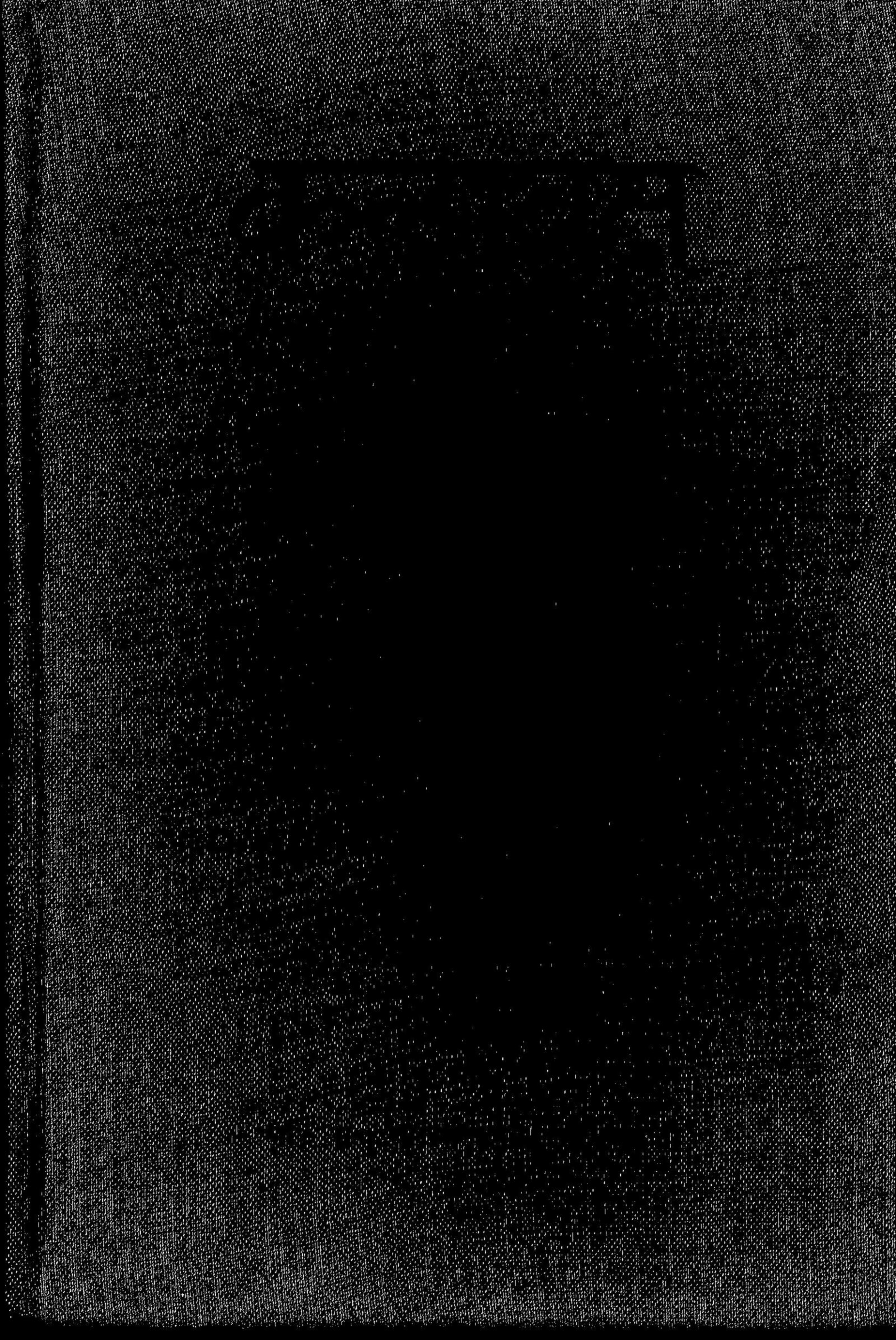

२

"एषः पंथाः"

सन् १८५७ के पश्चात् इस देश में कई महापुरुषों का जन्म हुआ। राष्ट्र-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उन्होंने अपनी-अपनी संकल्पना के अनुसार महाकार्यों का निर्माण किया। परंतु अनुभव यह आया कि आद्यप्रणेत्ता के निर्वाण के पश्चात् उसके कार्य की प्रगति अवरुद्ध हो जाती है, धीरे-धीरे कार्य परागति की ओर जाता है, और अन्ततोगत्वा निष्प्राण हो जाता है। कार्य की मूल प्रेरणाएं तथा परम्पराएं प्रथमतः विकृत हो जाती हैं और बाद में खण्डित। इस प्रकार के सभी महापुरुषों के नाम-निर्देश करने की आवश्कता नहीं है, वे सब सुप्रसिद्ध हैं। केवल उदाहरण के लिए हम लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गांधी की ही बात लें। दोनों की श्रेष्ठता सर्वविदित है।किन्तु उनके निर्वाण के पश्चात् उनकी विचार-प्रणाली तथा कार्यप्रणाली का क्या हुआ, यह एक अध्ययनीय विषय है। गांधीजी के पाश्चात् गांधीवाद की अवनति इतनी तेजी से क्यों हुई, इस प्रश्न की मीमांसा आचार्य बिनोबा जी ने की है। तिलक जी अपने जीवन के अन्तिम चरण में कहा करते थे कि "मेरे कंधों पर पांव रखकर ऊपर चढ़ने वाला कोई युवक मैं मेरे जीवनकाल में देखूंगा, ऐसा मुझे अब लगता नहीं।" उनके निर्वाण के पश्चात् कितनी शीघ्रता से उनकी परम्परा दुर्बल हो गई यह सब जानते हैं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थापक परमपूज्यनीय डॉक्टर जी के विषय में इससे एकदम विपरीत अनुभव आया। उनके निर्वाण के पश्चात् कार्य, प्रेरणा तथा परम्परा दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक बलवान तथा प्रभावशाली होती गई। अनेक बार आए हुए प्राण-संकट भी इसकी प्रगति को रोक नहीं सके। श्री बापू साहेब भिशीकर ने ठीक कहा है कि, "जिनकी मृत्यु के पश्चात् कार्यकर्ताओं में किंचित् भी विचलितता नहीं आई, और

जिनका कार्य सुसूत्र रूप से चलता रहा, आधुनिक भारत में डॉक्टर जी ऐसे एकमेव नेता थे।"

इस अभूतपूर्व उपलब्धि का श्रेय डॉक्टर जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को है। इस अलौकिक व्यक्तित्व द्वारा राष्ट्र को प्रदान किया गया सबसे बड़ा साधन तथा साधना अर्थात् "शाखा" है। एक ही समय संजीवनीमंत्र तथा पाशुपतास्त्र की भूमिका का निर्वाह करने वाली—"शाखा"। "परम् वैभवम्" की श्रेष्ठतम राष्ट्रीय आकांक्षा की पूर्ति करनेवाला राष्ट्रीय कल्पवृक्ष—"संघ-शाखा"।

पूज्यनीय डॉक्टर जी के इस जीवनकार्य का प्रारंभ सन् १९२५ की विजयादशमी के शुभ मुहूर्त पर हुआ। किंतु उस समय कार्य का नामकरण नहीं किया गया। प्रारम्भिक दिनों में न संघ स्थान था, न कार्यालय, न संविधान, न आज्ञाएं, न प्रार्थना, न प्रतिज्ञा, और न दैनंदिन कार्यक्रम। उस कार्य का "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ" नामकरण १७ अप्रैल, १९२६ को हुआ। कार्यक्रम के लिए किसी विशेष गणवेश की कल्पना का आंशिक प्रकटीकरण उसी वर्ष रामनवमी के अवसर पर हुआ। उन दिनों केवल इतनी अपेक्षा रहती थी कि सभी को किसी न किसी व्यायामशाला में जाना ही चाहिए। केवल रविवार को सुबह पाँच बजे एकत्रीकरण होता था, और रविवार तथा गुरूवार को नियमित रूप से भाषण का कार्यक्रम हुआ करता था। उन दिनों इस कार्यक्रम को "राजकीय वर्ग" कहा जाता था। उसे "बैद्धिक वर्ग" की संज्ञा सन् १९२७ के पश्चात् प्राप्त हुई।

संघ में दण्ड की (लाठी की) शिक्षा २८ मई, १९२६ से नियमित रूप से शुरू हुई। तभी से दैनंदिन एकत्रीकरण तथा प्रार्थना का भी प्रारंभ हुआ, और तभी हर महीने के प्रथम रविवार को बैठक का कार्यक्रम भी शुरू हुआ।

संघ के प्रथम वार्षिकोत्सव पर पथ संचलन का कार्यक्रम नहीं हुआ था; क्योंकि तब तक उसके लिए आवश्यक संख्या तथा अनुशासन का निर्माण पर्याप्त मात्रा में नहीं हुआ था। सन् १९२६ में सर्वप्रथम "रक्षा बंधनोत्सव" बैठक के रूप में मनाया गया। उसी वर्ष दिसम्बर से हर रविवार की सुबह सैनिकी शिक्षा देने का उपक्रम हुआ। सन् १९२७ में अल्पस्वरूप में पथ संचलन होने लगा। तभी लोगों के मन में घोष का विचार आया। सन् १९२७ में (मुस्लिम दंगे के कुछ पूर्व) ग्रीष्मकाल में पहला "अधिकारी शिक्षण वर्ग" (ओ० टी० सी०) हुआ। संघ की प्रतिज्ञा का सर्वप्रथम कार्यक्रम मार्च १९२८ में हुआ। उसी वर्ष विजयादशमी के दिन सर्वप्रथम गणवेशधारी स्वयंसेवकों का पथ संचलन हुआ। और उसी वर्ष संघ-विस्तार की दृष्टि से शिक्षा के निमित्त भैय्याजी दाणी आदि तीन विद्यार्थी स्वयंसवकों को वाराणासी भेजा गया। सन् १९२८ में श्री गुरूदक्षिणा उत्सव पहली बार मनाया गया।

"बिगुल" आदि आंशिक घोष का काम उन दिनों चल रहा था, किन्तु नियमित घोष

का प्रारंभ सन् १९२९ में हुआ। १० नवम्बर, १९२९ को "सरसंघचालक" पद का निर्माण किया गया।

संघ-कार्य के प्रारंभ के लगभग छह महीने तीन सप्ताह के पश्चात् इसका नामकरण हुआ। "सरसंघचालक" पद का निर्माण लगभग चार वर्ष और डेढ़ महीने के पश्चात् हुआ।

विभिन्न कार्यों का संचालन करने वाले नेताओं में प्रायः दो तरह की कार्यशैलियां दिखाई देती हैं। एक, अपने मन में कार्य की दिशा निश्चित होने के पश्चात् उसके विषय में अपने अनुयायियों को बताना और मार्गदर्शन का औचित्य समझने की क्षमता उन अनुयायियों में न रही तो भी तदनुसार उन्हें कार्य करने का आदेश देना। इस शैली के फलस्वरूप तात्कालिक कार्य ठीक ढंग से सम्पन्न हो सकता है, और शायद श्रद्धा के कारण लोगों में भी यह भाव निर्माण नहीं होता कि हमारे ऊपर यह निर्णय थोपा जा रहा है। किन्तु अनुयायियों में स्वयं विचार करने तथा ठीक निष्कर्ष पर पहुँचने की क्षमता इस शैली के कारण निर्माण नहीं हो पाती।

दूसरी शैली ऐसे नेताओं द्वारा अपनाई जाती है जिनके विचारों में स्पष्टता न होने के कारण आगामी योजना या निर्णय के विषय में भी स्पष्टता नहीं रहती। 'हमने लिया हुआ निर्णय ही उचित है', दृढ़ता के साथ ऐसा वे मन में भी नहीं सोच सकते। इसलिए यह चिंता उनके मन में रहती है कि यदि निर्णय के कुछ विपरीत परिणाम निकले तो उनके लिए हमें जिम्मेवार न ठहराया जाय, इसका आसान रास्ता है—स्वयं कुछ भी निर्णय न करने का। इस दृष्टि से उन्हें लोकतांत्रिक प्राणाली उपयुक्त दिखाई देती है। अपना खुद का निर्णय कुछ नहीं, स्पष्ट मार्गदर्शन करने की अपनी क्षमता नहीं, इस स्थिति में लोकतांत्रिक पद्धति के नाम पर निर्णय की जिम्मेवारी लोगों पर डालना, परिणाम अच्छा निकला तो श्रेय में अपनी साझेदारी है ही, परिणाम बुरा निकला तो उसकी जिम्मेवारी अपने ऊपर नहीं। "आपने ही यह सामूहिक निर्णय लिया था" यह कहकर पूरी जिम्मेवारी और लोगों की ही है यह बताने के लिए पर्याप्त गुंजायश, और फिर इस तरह निर्णय की जिम्मेवारी टालते हुए यह श्रेय लेने के लिए भी पूरी गुंजायश कि हमारा स्वाभाव लोकतांत्रिक और उदार है।

ये दोनों शैलियां पूजनीय डॉक्टर जी के विचार तथा दूरदर्शिता के अनुकूल नहीं थीं।

दूरदर्शिता अर्थात् शेखमहंमदी स्वप्नरंजन नहीं है। कुछ बातें निश्चित होती हैं। ध्येय या अधिष्ठान, वहां तक जाने की दिशा, उपयुक्त साधन, आवश्यक विधि-निषेध आदि मौलिक बातों में निश्चितता होती है। किन्तु समय-समय पर निर्माण होने वाली परिस्थितियों में अनिश्चितता रहती है। अपने सहयोगियों के स्वभाव विशेष, विरोधकों के स्वाभाव विशेष तथा क्षमताएं, अकस्मात् आने वाली प्राकृतिक या मनुष्य निर्मित बाधाएं और घटित होने वाली घटनाएं, सर्वसाधारण जनमानस का झुकाव, जिन पर अपना

नियंत्रण नहीं, ऐसी विविध तत्वों और ताकतों की गतिविधियां आदि बातों के कारण परिस्थितियां किस समय कैसा मोड़ लेंगी यह अनिश्चितता हमेशा बनी रहती है। उनके प्रभाव में आकर कुछ लोग केवल प्रवाह-पतित बनना स्वीकार कर लेते हैं, यह उचित नहीं। किन्तु भविष्य की दिशा के विषय में मन में केवल एक ही अनुमान रखकर योजनाएं बनाना भी उचित नहीं है। आने वाली परिस्थितियों के कितने विभिन्न विकल्प हो सकते हैं इसका सर्वंकष विचार करना, सभी वैकल्पिक परिस्थितियों की सम्यक् कल्पना करना, और हर एक वैकल्पिक परिथिति में कार्य को आगे कैसे बढ़ाया जा सकता है इसकी विभिन्न योजनाएं मन में तैयार रखना दूरदर्शिता का लक्षण है। नेपोलियन कहा करता था कि–"परिथिति ने कैसी भी करवट ली तो भी मुझे आश्चर्य नहीं होता, मैं उसके लिए पहले से ही तैयार रहता हूँ, क्योंकि मै सभी वैकल्पिक परिथितियों की पहले ही कल्पना कर लेता हूँ।" मास्को अपने हाथ में आने के बाद वहाँ का प्रशासन किस तरह का होना चाहिए, इसका प्रारूप एक जेब में रखना, और साथ ही रूसी सेनाएं बर्लिन में घुस आईं तो बर्लिन का बचाव कैसे करना, इसका प्रारूप दूसरी जेब में रखना, यह दूरदर्शिता है। निश्चित बातों के प्रकाश में सर्वथा अनिश्चित भविष्य काल के विषय में बनाने वाली योजनाओं में लचीलापन होना चाहिए, यह स्पष्ट है। यह लचीलापन याने प्रवाहपतितत्व नहीं हैं। यह निश्चयात्मिका बुद्धि का अभाव नहीं, परिपक्वता है।

जन्मजात देश-भक्ति, समकालीन सभी सार्वजनिक कार्यों में प्रत्यक्ष सक्रिय सहभाग, विभिन्न देशी-विदेशी विचारधाराओं का अध्ययन और इन सब बातों के चलते हुए स्वयं अपना गहन, मौलिक और दूरदर्शी चिंतन, पूजनीय डॉक्टरजी की विशेषता थी और इसी के फलस्वरूप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का निर्माण हुआ, यह तथ्य अब सब जानते हैं।

सभी सम्बन्धित विषयों पर उनके अपने निश्चित विचार थे, किन्तु उनको प्रकट करने में उन्होंने कभी भी जल्दबाजी नहीं की।

उनकी अपनी विशिष्ट कार्यशैली थी। संघ के ध्येय आदि अपरिवर्तनीय विषयों की बात अलग है। उनके बारे में तो समझौते का प्रश्न ही नहीं था। वे जानते थे कि "Compromisation is an umbrella, not a roof."–समझौता केवल छाता है, छत नहीं।कार्यपद्धति की बात ही अलग थी। ऐसी स्थिति थी कि अपनी कोई भी पूर्वनियोजित बात यदि वे सबके सामने सीधे रखते तो सभी उसको सहर्ष स्वीकार करते। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। हर विषय में उचित निर्णय हो, यह चिंता तो उन्हें अवश्य थी, किन्तु वे सोचते थे कि किसी भी विषय में पहले ही स्वयं अपना मत प्रकट न करके अपने सहयोगियों की समझदारी का स्तर इतना ऊँचा किया जाय कि वे स्वयं अपने ही विचार से अभिप्रेत निर्णय पर पहुँच सकें, फिर यह प्रक्रिया पूरी होने में विलम्ब भले ही हो जाय।डॉक्टर जी का विचार था कि उतनी देर प्रतीक्षा करना अधिक लाभदायक होगा, बनिस्वत इसके कि अपना विचार कार्यकर्ताओं और सहयोगियों पर थोपा जाय। इस शैली

के लिए धीरज और इस आत्मविश्वास की भी आवश्यकता थी कि धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूप से मैं अपने सहयोगियों को अपने निष्कर्ष पर ले आऊंगा।

कार्य का नामकरण १७ अप्रैल, १९२६ को हुआ। इसके लिए हुई बैठक का प्राध्यापक दादा साहेब सावलापूरकर द्वारा दिया हुआ वृतान्त उद्‌बोधक है। बैठक में नाम के विषय में तीन सुझाव आये। भारतोद्धारक मण्डल, जरीपटका मण्डल और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ। इस पर खुली चर्चा हुई और सबकी सहमति से तीसरा नाम स्वीकृत किया गया। प्रा० सावलापूरकर लिखते हैं, "डॉक्टर जी ने संस्था का नाम अपने मन में पहले ही निश्चित किया हुआ था।" प्रथम अपने साथियों की समझदारी का स्तर बढ़ाना और फिर सम्बन्धित विषय चर्चा के लिए लाना, उनकी कार्यशैली का क्रम था।

सन् १९२८ में यह सुझाव आया कि ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी को (शिवाजी राज्याभिषेक दिन) नागपुर में स्वयंसेवकों का विशाल एकत्रीकरण किया जाय, इससे स्वयंसेवकों का आत्मविश्वास बढ़ेगा। डॉक्टरजी का मत था कि इससे विरोधी अधिक सतर्क तथा सक्रिय हो जायेंगे। किन्तु उन्होंने अपना विचार प्रकट नहीं किया। वे कार्यकर्ताओं को प्रारंभ में ही निराश नहीं करना चाहते थे। उन्होंने कहा—"इस सुझाव पर प्रदेश के प्रमुख संघचालकों की प्रतिक्रिया जानने के पश्चात् ही निर्णय लेना ठीक रहेगा"। पत्र लिखे गए। सभी के उत्तर विशाल कार्यक्रम करने के सुझाव के प्रतिकूल थे। अतएव यह विचार छोड़ दिया गया।

संघ कार्य की नींव मजबूत बनाने की दृष्टि से यह शैली बहुत उपयुक्त सिद्ध हुई। डॉक्टर जी की यह मान्यता थी कि किसी भी संगठन में अनुशासन की गारंटी उसके संविधान की धाराओं में नहीं, अपितु सदस्यों की समझदारी के स्तर में है।

पूजनीय डॉक्टर जी के प्रदीर्घ गहन चिंतन और तपश्चर्या का परिपक्व फल है—राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ। उनका चिंतन मूलगामी भी था तथा दूरगामी भी। इस कारण बड़े से बड़े राष्ट्रीय प्रश्नों से लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यक्तिगत मनोव्यापारों तक सभी बातों पर उनका चिकित्सक तथा रचनात्मक ध्यान रहता था।

सर्वसाधारण व्यावहारिक शब्दों के प्रयोग की छोटी सी बात ही लीजिए।

"हिंदी" नहीं "हिन्दू"। "हिंदभूमि" नहीं, "हिन्दुभूमि"। "वयं संघीयाः" नहीं, "वयं हिन्दू राष्ट्रांङ्गभूताः"। "संघ की जय" नहीं, "भारतमाता की जय"। "संघ की बैंक" नहीं, "बैंक में संघ"। "संघ संस्था" नहीं, "अपना संघ रूपी राष्ट्र"। "राष्ट्र सेनापति" नहीं, "सरसंघचालक"। "सैनिकी संगठन" नहीं, "पारिवारिक संगठन"। "सभासद" नहीं, "स्वयंसेवक"। "राजकीय वर्ग" नहीं, "बौद्धिक वर्ग"। "मैं" नहीं, "हम"। "हमारे संघ का उत्सव" नहीं, "अपने संघ का उत्सव"। "अहिन्दू विरोध" नहीं, "हिन्दू संगठन"। "आपसी भेद नष्ट करो" नहीं, "हम सब एक हैं"। "शिवाजी

राज्याभिषेक दिन" नहीं, "हिन्दू साम्राज्य दिन"। "हिन्दू-मुस्लिम दंगा" नहीं, "मुस्लिम दंगा"। "देशद्रोही" नहीं, "देशशत्रु"। केवल "धर्मपालन" नहीं, "धर्मरक्षण"। "यथाशक्ति" नहीं, "तन-मन-धनपूर्वक"। "दान" नहीं, "समर्पण"। "चंदा" नहीं, "श्रीगुरूदक्षिणा"। "स्वार्थत्याग" नहीं, "पारिवारिक कर्तव्य"। "राजमान्य राजेश्री" नहीं, "परम मित्र"। "पांच बजे" नहीं, "ठीक पांच बजे"। संख्या "२७-२८" नहीं, "२७" या "२८"। "हिंदू कालोनी" नहीं, "गोले कॉलनी"। "मैं पांच वर्ष पूर्व संघ का सदस्य था" नहीं, "मैं आमरण संघ-स्वयंसेवक हूं"। "शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए" नहीं, "शीघ्र सारे सद्गुणों से पूर्ण हिन्दू कीजिए"। "राजपूत रमणी" नहीं, "राजपूत देवी"। "मगरूक दस्तगीर" नहीं, "मंगरूण दत्त" "Teach me how to die" नहीं, "Teach me how to live." (मरने की नहीं, जीने की शिक्षा)।

ऐसे कितने ही उदाहरण हैं। ये सब स्वयं अपने में स्पष्ट हैं। इनका भाष्य करने की आवश्यकता नहीं है।

पूज्य डॉक्टर जी ने जिस कार्य का संकल्प किया वह केवल दूरदर्शिता का ही नहीं, अपितु परम साहस का भी परिचायक है। पिछली कई शताब्दियों में हिन्दू इतिहास में इस तरह की प्रक्रिया हुई ही नहीं थी। हिन्दुत्व तथा हिंदू समाज के संरक्षण, संवर्धन तथा सुधार के लिए कई महापुरुषों ने इतिहास काल में श्रेष्ठ प्रयास किए थे, और उन प्रयासों के श्रेष्ठ परिणामों से हिन्दू समाज उस कालखण्ड से लाभान्वित भी होता रहता था। किन्तु इनमें से हर एक प्रयास की परिणति अन्ततोगत्वा सम्प्रदाय निर्मिति में हुई। प्रत्येक प्रयास ने हिन्दू समाज के अन्तर्गत एक संगठित विभाग का स्वरूप धारण किया। पूजनीय डॉक्टर जी ने इस पहलू पर बारीकी से विचार किया कि इतिहासकालीन हर श्रेष्ठ प्रयास "अखिल हिन्दू" भाव से प्रारम्भ हुआ किन्तु आगे चलकर केवल एक पंथ या सम्प्रदाय बनकर क्यों रह गया ? मनोविज्ञान का उनका अध्ययन बहुत सूक्ष्म था। वे समझ चुके थे कि इस तरह का सम्प्रदाय-भाव सम्पूर्ण समाज के हित की दृष्टि से घातक है, यह बात जितनी सही है उतनी ही यह बात भी सही है कि यह मनुष्य का स्वभाव सुलभ भाव है। जिस तरह पानी स्वाभाविक प्रक्रिया में नीचे की ओर जाता है, और यदि उसे ऊपर चढ़ाना हो तो उसके लिए विशेष प्रयास (पंपिंग आदि) करने पड़ते हैं, वैसे ही सामान्य मनुष्य का मन स्वाभाविक रूप से पांथिकता-साम्प्रदायिकता की ओर जाता है। यदि "अखिल हिन्दू" भाव की ओर उसे ले जाना हो तो उसके लिए विशेष सतर्कता रखने और विशेष संस्कार अंकित करने की आवश्यकता है। प्रारंभ से ही यह सतर्कता न रखी जाने के कारण ही महाप्रयासों में संकीर्णता ने प्रवेश किया। पूज्य डॉक्टर जी ने प्रारंभ से ही यह सर्तकता रखी। उन्होंने यह तो स्पष्ट किया ही कि परिकल्पना की दृष्टि से संघ और समाज समव्याप्त है, और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संघ सम्पूर्ण हिन्दू समाज के साथ एकात्म है। संघ हिन्दू समाज के अन्तर्गत संगठन नहीं खड़ा करना चाहता बल्कि सम्पूर्ण, निःशेष हिन्दू समाज को

सुसंगठित अवस्था में लाना चाहता है, किन्तु संस्थाभाव (Institutionalism) मनुष्य स्वभाव-सुलभ होते हुए भी उसका सम्पूर्ण अभाव रह सके इस दृष्टि से समर्थ संस्कारों की योजना करना और मनसा-वाचा-कर्मणा इस विषय में सदैव सतर्कता रखी जा सके इस तरह की कार्यपद्धति का सूत्रपात करना, डॉक्टरजी की योजना की एतिहासिक विशेषता है। डॉक्टर जी के जन्म शताब्दी वर्ष (१९८९) में इस पहलू पर पूरा प्रकाश डाला गया है, इसलिए यहां इसका विस्तृत, सोदाहरण विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है।

जिसके मन में संस्थाभाव (Institutionalism) है वह व्यक्ति क्या निम्नलिखित विचार अपने अनुयायियों को बता सकेगा ?

- In our country there are so many colleges of arts, but there are no colleges of heart.—अपने देश में कला के तो अनेक महाविद्यालय हैं किन्तु हृदय का महाविद्यालय एक भी नहीं है। मेरी अभिलाषा है कि हृदय परिवर्तन का भी महाविद्यालय बने।
- "लोगों से आत्यांतिक प्रेम करो। कांग्रेस, सोशलिस्ट, हिन्दू सभा आदि संस्थाओं के लोग अपने ही हैं। अतः उनसे शुद्ध मन से व्यवहार करो। कांग्रेस का कोई भी व्यक्ति हमसे द्वेष नहीं कर सकता। द्वेष का कारण ही कहां है ? दल भिन्न रहे तो भी मित्र के नाते हम व्यवहार में खुले दिल से एकत्र आ सकते हैं। हमें अपने ही मत के लोगों में काम नहीं करना है, तो विरोधकों को भी अपना बनाना है। इसलिए संघ के विषय में उनकी भावना शुद्ध चाहिए। अपना ध्वज तथा विचार-प्रणाली उन्हे अमान्य होगी तो भी हमको उनसे द्वेष नहीं करना चाहिए। उन्हें हमारा द्वेष करने के लिए कोई कारण हमारी ओर से नहीं मिलना चाहिए। सभी बातें सुव्यवस्थित हों इसलिए अपना व्यवहार प्रेममय ही चाहिए। प्रेम के अलावा दूसरा मार्ग है ही नहीं। प्रेम तथा आदर बढ़ाते-बढ़ाते अपनी शक्ति बढ़ाते रहना चाहिए"।
- "देशकार्य कहीं भी रुक गया और उसे आगे ले जाने की क्षमता अपने पास है तो उस स्थिति में वह कार्य किस दल का है यह न देखते हुए उसको पूरा करने के लिए हमें आगे बढ़ना चाहिए।"
- "हम भगवान से प्रार्थना करें कि वह सबको सद्‌बुद्धि दे। किन्तु अपनी सद्‌विवेक बुद्धि और परमेश्वर का स्मरण करते हुए हमने कार्य किया तो भी यदि कोई नाराज हो जाय और अपना विरोध करे तो उसका कोई इलाज नहीं है। ऐसी बातों से डरकर हम कितने दिन चल सकते हैं ?"

यह वृत्ति पूजनीय डॉक्टरजी के पश्चात् भी कायम रही। प्रथम प्रतिबंध के पश्चात् पूज्य श्रीगुरुजी का "वयं पंचाधिकं शतम्" और द्वितीय प्रतिबंध के पश्चात् पूजनीय बालासाहेब का "भूल जाओ और क्षमा करो" (forget and forgive) का निर्देश इसी

वृत्ति का परिचायक है।

इसी मनोभूमिका में से संघ के साध्य-साधन-विवेक का उदय हुआ।

साध्य–"परं वैभवं नेतुमेतत् स्वराष्ट्रम्"।

उसका आधार–"विजेत्री च नः संहता कार्यशक्तिः"।

हिन्दुओं की विजयशालिनी संगठित कार्यशक्ति याने सम्पूर्ण हिन्दू समाज का विजयशाली संगठन कार्य का आधार, उसके द्वारा धर्म का संरक्षण, और उसके फलस्वरूप हिन्दू राष्ट्र का परम वैभव। यह है साध्य-साधन विवेक।

इसमें से आधारभूत कार्य, अर्थात् समाज संगठन, संघ करेगा। एक-एक हिन्दू के साथ सम्पर्क प्रस्थापित करना, उसके हृदय पर समाज के साथ एकात्मता और अंगांगीभाव का संस्कार अंकित करना, इस प्रकार के सुसंस्कारित हिन्दुओं अर्थात् स्वयंसेवकों का अनुशासनबद्ध संगठन निर्माण करना, और उस संगठन की सीमाएं बढ़ाते-बढ़ाते इतना बढ़ाना कि संघ स्थान की सीमाएं और हिन्दुस्थान की सीमाएं समव्याप्त हो जायं, और उस स्थिति में संघ समाज में विलीन हो जाय और समाज संघमय हो जाय। जिस तरह कोई भी जख्म जब तक पूरी तरह अच्छा नहीं होता तब तक उसके ऊपर झिल्ली बनी रहती है और जख्म पूरा अच्छा होते ही झिल्ली स्वयंमेव गल जाती है, उसी तरह जब तक विघटन का जख्म कायम है तब तक "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ" नाम की विशेष झिल्ली रहेगी। विघटन का जख्म जैसे ही भर जायगा वैसे ही "राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ" नाम की झिल्ली भी स्वयंमेव गल जायेगी। और उस अवस्था में संघ और समाज एकरूप हो जायेगे।

इस आधारभूत कार्य का समर्थ साधन, अर्थात् कार्यपद्धति–का डॉक्टर जी ने निर्माण किया। हर दिन हिन्दू कुछ समय के लिए एकत्रित आएं, एकत्रित आकर सामूहिक कार्यक्रम करें, सामूहिक समष्टिगत कार्यक्रमों के माध्यम से सामूहिक समष्टिगत मानसिकता निर्माण होती है, इस मनौवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार अपने-अपने हृदय में सामूहिकता का, समष्टि का संस्कार ग्रहण करें, और यह संस्कार ग्रहण की पुनरावृत्ति हर दिन करते रहें। जैसे पीतल के बर्तन को हर दिन मांजना पड़ता है, इस कार्यपद्धति का भी यही केन्द्र बिन्दु है। इस पद्धति का नाम है "शाखा"। कई दशकों के अनुभव के आधार पर सभी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सम्पूर्ण समाज को सुसंगठित करने की दृष्टि से संघ की कार्यपद्धति दोनों अर्थों में स्वयंपूर्ण है। यदि इस कार्यपद्धति को लेकर चलें तो संगठन कार्य की सिद्धि के लिए दूसरी किसी भी पूरक कार्यपद्धति की आवश्कता नहीं है, और किसी भी मोह के कारण इस कार्यपद्धति का त्याग किया तो दूसरी कोई भी वैकल्पिक कार्यपद्धति ऐसी नहीं हो सकती, जो समाज संगठन का कार्य सिद्ध कर सकेगी। समाज संगठन के लिए समर्थ एक मात्र कार्यपद्धति अर्थात "शाखा"। "एषः पंथाः"।

१८ कल्पवृक्ष

कार्य-सिद्धि के लिए प्रमुख आधारभूत साधन है—शाखा। किन्तु "पर वैभवम्" तक पहुँचने की दृष्टि से राष्ट्रजीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न उपयुक्त कार्यों की रचना तथा विचारों का विकास करने की आवश्कता है। यह सब कैसे होगा? संघ अपने को सम्पर्क, संस्कार, स्वयंसेवक, संगठन तक ही सीमित रखेगा तो ये सब कार्य कौन करेगा? इन प्रश्नों के उत्तर में बताया गया कि ये सब कार्य होकर रहेंगे। कोई भी ऐसा कार्य नहीं बचेगा जो करणीय हो, किन्तु किया नहीं गया हो। किन्तु संघ अपनी निश्चित परिधि के बाहर नहीं जायगा। सम्पर्क, संस्कार, स्वयंसेवक, संगठन कितना कठिन कार्य है, यह बाहर के लोग नहीं जानते। वे समझते नहीं कि "स्वयंसेवक" और "मतदाता" में कितना गुणात्मक अंतर है। एक-एक स्वयंसेवक का निर्माण बहुत ही परिश्रम के फलस्वरूप होता है। संघ अपनी पूरी शक्ति इसी पर केन्द्रित करेगा तो भी इसको पूर्ण करने में बहुत समय लगेगा। यदि संघ अपना ध्यान इधर-उधर जाने देगा तो यह आधारभूत कार्य कभी पूरा होगा ही नहीं। इसलिए संघ तो इसी पर अपनी सारी शक्ति केन्द्रित करेगा। किन्तु संघ से प्रेरणा और संस्कार प्राप्त किए हुए स्वयंसेवक अपनी रुचि, प्रकृति, प्रवृत्ति के अनुसार राष्ट्रजीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश करेंगे और अपने-अपने क्षेत्र में संघ द्वारा बताये हुए पथ्य तथा निषेधों का पालन करते हुए उपयुक्त कार्यों की रचना तथा विचारों का विकास करेंगे। इस प्रकार राष्ट्र के पुनर्निर्माण का कार्य सम्पन्न होगा। मानो एक तरह से यह श्रम-विभाजन है। संघ स्वयंसेवकों का निर्माण करेगा, स्वयंसेवक विविध कार्यों तथा विचारों का विकास करेंगे। यह करते समय बरतने की सावधानियां, पालन करने के पथ्य, विविध कार्यों के तौलनिक महत्व की प्रमाणबद्धता (Sense of proportion) तथा प्राथमिक-क्रम (Order of priorities) आदि सभी बातों पर सूक्ष्मता से दूरदर्शी विचार करते हुए राष्ट्र-पुनर्निर्माण की संघ की सर्वंकष योजना (All out Scheme) सोची गई। योजना सर्वसमावेशक है; किन्तु साथ ही यह भी आग्रहपूर्वक कहा गया कि इसका मूलाधार शाखा ही है। इन सभी कार्यों की रचना पिरामिड के समान रहनी चाहिए। पिरामिड में चूना, सीमेंट आदि का उपयोग नहीं किया गया। केवल बड़े-बड़े पत्थर एक के ऊपर एक रखकर पिरामिड बनाए गए। फिर भी वे ३-४ हजार वर्षों से जैसे के वैसे खड़े हैं। इसका रहस्य क्या है? इसका रहस्य है उनका पहला स्तर सबसे विस्तृत होना, दूसरा उससे छोटा, तीसरा दूसरे से छोटा, और चौथा तीसरे से छोटा, इस तरकीब से सारे पत्थर एक दूसरे पर जमाकर (Standing) रखे गए हैं। यदि कोई व्यक्ति सोचे कि मैं उल्टा पिरामिड (Inverted Pyramid) बनाऊंगा, जिसका पहला स्तर सबसे छोटा होगा और ऊपर का स्तर उत्तरोत्तर अधिकाधिक विस्तृत होने वाला होगा, तो ऐसा पिरामिड बनते-बनते ही गिर जायगा। संघ-सृष्टि के पिरामिड का पहला आधारभूत स्तर याने शाखा है। यह स्तर छोटा रहा और इसके ऊपर के विभिन्न संस्थाओं के स्तर उत्तरोत्तर अधिकाधिक विस्तृत बनने वाले रहे तो इस सृष्टि का यह पिरामिड बनते-बनते ही टूट

जायेगा, सारे पत्थर गिर जायेंगे। योजना सर्वंकष है, किन्तु क्रियान्वयन का मूलाधार, केन्द्र-बिन्दु, शाखा है। जिस तरह संघ-दर्शन का केन्द्र-बिन्दु "हिन्दू राष्ट्र" है, बिना हिंदू राष्ट्र के संघ-दर्शन अर्थात् बिना प्रिन्स ऑफ डेन्मार्क के "हॅम्लेट" नाटक, वैसे ही संघ-योजना का केन्द्र-बिन्दू शाखा है, बिना शाखा के संघ-योजना अर्थात् बिना छेना के रसगुल्ला या बगैर पौरुष के पुरुष।

* * * *

औषधि कितनी भी गुणकारी क्यों न हो, उसके साथ बताए हुए पथ्यों का पालन नहीं किया तो उसकी गुणकारिता कम हो जाती है। संघ की कार्यपद्धति की भी बात ऐसी ही है। इसकी परिणामकारकता इस बात पर अवलम्बित है कि स्वयंसेवक पथ्यों का पालन कहां तक करते हैं। पथ्यों का पालन दो कारणों से कठिन हो जाता है। एक, मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ। इसके कारण स्वतंत्रतापूर्व काल में भी कठिनाइयां आती थीं। और दूसरा, स्वातंत्र्योत्तर कालखण्ड में सार्वजनिक जीवन में निर्माण हुए विशेष कीटाणु, जिनके संस्पर्श से खुद को बचाना अच्छे-अच्छे लोगों के लिए भी दुष्कर हो जाता है। जहाँ गलत जीवन-मूल्य, गलत प्रतिष्ठानिकष, ध्येयवादिता का ह्रास, व्यक्तिवाद का बोलबाला, सस्ती लोकप्रियता की होड़, तात्कालिक व्यक्तिगत लाभ के लिए चिरकालीन राष्ट्रीय क्षति को स्वीकार करने की प्रवृत्ति, प्रत्यक्ष कार्यविरहित प्रसिद्धि प्राप्त करने की प्रवृत्ति आदि कई बातों के कारण देश के सार्वजनिक जीवन में विषैला वायुमण्डल फैल गया हो वहां सही व्यवहार करने वालों को व्यवहार-शून्य पागल कहा जाता है। किन्तु हर एक गलत बात के दुष्परिणाम आगे चलकर भुगतने ही पड़ते हैं। तत्काल तो उससे लाभ ही लाभ दिखाई देता है।

ऐसी सभी वर्तमान तथा संभाव्य बातों का दूरदृष्टि से विचार करते हुए उनके बारे में स्वयंसेवकों को सचेत करने का काम सन् १९२५ में ही प्रारंभ हुआ था और अभी भी वह चल ही रहा है।

वैसे तो अपने आचार, व्यवहार तथा जीवन-पद्धति से पूजनीय डॉक्टर जी द्वारा उपस्थित किए हुए आदर्श उनके जन्म-शताब्दी वर्ष (१९८९) में पर्याप्त मात्रा में सबके ध्यान में आए हैं। उदाहरणार्थ, यह सब जानते हैं कि विशुद्ध प्रेम के कारण पूज्य डॉक्टरजी लोगों के सुख-दुःख के साथ एकात्म हो जाते थे। व्यक्ति-जीवन तथा पारिवारिक जीवन में कुछ प्रसंग भौतिक महत्व रखते हैं। जैसे पुत्र-जन्म, नामकरण विधि, उपनयन, परीक्षा के लिए जाने का समय, परीक्षा पास होना या न पास होना, प्रथम वर्ग या डिस्टिंक्शन प्राप्त होना, बीमारी-रुग्णावस्था, अपघात (Accident), विवाह, मृत्यु, शवयात्रा, तेरहवीं, मासिक श्राद्ध, शिशु का नर्सरी में प्रथम प्रवेश, हाई स्कूल या कालेज में प्रथम प्रवेश, छात्रावास में रहने या स्वतंत्र कमरा लेकर रहने का प्रारम्भिक दिन, ऐसे कुछ

व्यक्ति-परिवार में किसी के बीमार होने के कारण जिनको रात-रात जागरण करना पड़ रहा है, दुर्घटना के कारण जो शोकाकुल है, शारीरिक अक्षमता, मंदबुद्धि या मानसिक रुग्णावस्था के कारण जो सार्वजनिक उपहास का विषय बने हैं, दुर्लक्षित तथा उपेक्षित, या जिनके मन में यह भावना है कि "हम दुर्लक्षित, उपेक्षित हैं", समाज के दुर्बल घटक या ऐसे घटक जो स्वयं अपने को दुर्बल मानते हैं—इस प्रकार के सभी प्रसंगों में और सभी व्यक्तियों को डॉक्टर जी के हार्दिक प्रेम का अनुभव आता था। उनका सम्पूर्ण जीवन इस प्रकार के नानाविध आदर्श प्रस्तुत करने वाला था। किन्तु इसके अलावा भी कार्यपद्धति तथा कार्य की दृष्टि से संभाव्य गलतियों के विषय में स्वयंसेवकों को पहले से ही सावधान करने का कार्य भी उन्होंने दूरदर्शितापूर्वक प्रारंभ से किया।

*　　*　　*　　*

केशव उवाच :-

– किसी भी परिस्थिति की चिंता न करते हुए कम से कम एक स्थान पर प्रतिदिन इकट्ठा होने के कार्यक्रम पर बल दिया जाय।

– Sangh does not take part in day-to-day politics. (संघ दिन-प्रतिदिन की प्रचलित राजनीति में भाग नहीं लेता है।)

– शिशुओं का गणप्रमुख त्यागी होना चाहिए। शिशुओं को खिलाना सरल काम नहीं है। उन्हें खिलाते-खिलाते कभी-कभी नीरसपन एवं ऊब आने लगती है। किन्तु ये ऊबानेवाले काम राष्ट्र के लिए करने ही पड़ते हैं। आज के नेतागण ये काम नहीं करते। राष्ट्रीय संगठन का काम अत्यन्त कष्ट और कसाले का है। परन्तु उसमें से ही तेज निर्माण होता है। नागपुर की शाखा में पहले जो शिशु आते थे वे ही आज उत्साही तरुण कार्यकर्ता बनकर काम कर रहे हैं। इसी प्रकार आज के बाल स्वयंसेवक हमारी भावी शक्ति हैं।....बाल स्वयंसेवकों के कारण ही आज संघ की शोभा है।

– स्वयंसेवक-वृद्धि की कला हमें अवगत कर लेनी चाहिए तथा कोई भी बात अभ्यास से सिद्ध हो सकती है।

– हमारा आग्रह लेखन, भाषण, प्रकाशन आदि पर न होकर सब-का-सब बल कार्य करने पर है।

– हमें जो सफलता मिली है वह स्वयंसेवकों की निष्ठा और अध्यवसाय के बल पर है, सामाचारपत्रों के द्वारा यह कार्य नहीं हो सकता था।

– लाखों लोगों का सुसम्बद्ध रूप से संग्रह करने वालों के लिए श्रीसमर्थ रामदास द्वारा

ग्रंथित संगठन के सूत्र व्यवहार में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

- काम बढ़ाओ अन्यथा विशाल कार्यालय बना दोगे और उसमें अंग्रेज ठाठ के साथ अपनी कचहरी लगाकर बैठेंगे।
- संघ केवल शब्दों का खेल न होकर एक आचरणीय जीवन-पद्धति है तथा मन और तन को उस पद्धति की आदत लगाने के लिए संघ के दिन-प्रतिदिन के कार्यक्रम अत्यंत प्रभावी साधन हैं।
- लोगों की मनोवृत्ति पर परिणाम करने के लिए समाचारपत्रों का थोड़ा बहुत उपयोग अवश्य है, किन्तु एक टिकाऊ एवं अनुशासनपूर्ण संगठन निर्माण करने में उनका कोई उपयोग एवं महत्त्व नहीं है। इसके लिए तो स्वयंसेवकों को नित्य एकत्र करके खेल-कूद, लाठी-काठी, संचलन, गीत, बौद्धिक और प्रार्थना द्वारा संस्कार करने वाले कार्यक्रम ही प्रभावी होते हैं।
- मेरी इच्छा सफेद को काला (कागजी कार्य) न करते हुए हिन्दुओं का अभेद्य एवं अजेय संगठन निर्माण करने की है।
- निरंतर बढ़ने वाला प्रत्यक्ष कार्य ही बिना कारण आघात करने वालों को सही उत्तर होता है।
- सत्याग्रह में जो लोग भाग लेना चाहते हैं वे व्यक्तिगत रूप से भाग ले सकते हैं।
- आपने जिन व्याख्याताओं की योजना की है वे बहुत तरुण हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में भाषण देने की लत अभी से लग जाना उनके लिए ठीक नहीं होगा। यह हो गया तो उनकी मनोवृत्ति में अपनी दृष्टि से अवांछनीय परिवर्तन हो सकता है।
- आपके यहां के समाचारपत्रों में संघ के विरुद्ध उठा हुआ तूफान हम सबके लिए खूब विनोद का विषय बन गया है। हमारे मन पर इन बातों का कोई परिणाम नहीं होता। आप इस विषय में निःशंक रहें। किन्तु आप इस बात की चिंता अवश्य करें कि इस प्रकार के अपप्रचार से आपके यहां के कार्य को किसी प्रकार का धक्का न लगने पाए। इस प्रकार की बातों से अपने कार्य की निश्चित वृद्धि होगी, इसमें कतई शंका नहीं है।
- इस तरह प्रसिद्धि हुई तो कार्य के प्रथमारम्भ में ही तरह-तरह के विघ्न आयेंगे। इस कारण हमें अपने कार्यारंभ में ही प्रसिद्धि नहीं चाहिए। लोगों के सामने दृश्य स्वरूप में कार्य आता है तो अपने आप उसकी प्रसिद्धि होती है और वह संगठन के लिए हितकारक हुआ करती है।
- इसमें कतई शंका नहीं कि (आप निकाल रहे) इस पत्र के द्वारा सदैव अपनी ही विचार-सरणी का प्रतिपादन होगा। किन्तु संघ पर विभिन्न लोगों द्वारा किए जाने वाले आरोप तथा उनके उत्तर-प्रत्युत्तर के झगड़े में आप बिल्कुल न पड़ें। आजकल

आपके यहां के पत्रों में संघ पर अनेक प्रकार के झूठे आरोप पढ़ने को मिलते हैं। ये आरोप चाहे समाचरपत्रों में हों अथवा सार्वजनिक सभाओं में, हमें उनका उत्तर न देते हुए उनकी ओर पूर्णतः दुर्लक्ष्य करना चाहिए।

- मान लीजिए किसी घर में आग लगने पर कुछ व्यक्ति घर के आदमियों को बचाने की कोशिश कर रहे हैं, उस समय यदि कोई कहने लगे कि "बरामदे की बल्ली में भी आग लगी है, यदि आप उसे नहीं बचा सकते तो आपके प्रयत्नों का क्या उपयोग?" तो उसका यह कहना ठीक होगा क्या? आज देश की ऐसी ही स्थिति है। संघ ने समाज-जागरण का कार्य अपने हाथ में लिया है। जिन्हें दूसरे भाग जलते हुए दिख रहे हैं तथा उनके सम्बन्ध में उनके मन में वेदना है तो वे अवश्य काम करें, किन्तु संगठित समाज निर्माण होने तक संघ ही सब कुछ करेगा, ऐसी अपेक्षा किसी को नहीं रखनी चाहिए। हम वह स्थिति निर्माण करने के लिए प्रयत्नशील हैं कि जिसके बाद "संघ क्या करेंगा" यह प्रश्न पूछने की आवश्यकता ही न रह जाय।
- क्षणमात्र के लिए उत्साहवर्धक तथा तात्कालिक वीरता प्रगट करने वाले कार्यक्रम से संघ अलिप्त रहे, क्योंकि उनसे संगठन की मजबूती को धक्का लग सकता है।
- संघ का प्रत्येक अधिकारी संघ की सम्पूर्ण शिक्षा का तज्ञ होना चाहिए।
- स्वयंसेवक के जीवन में यदि कोई हर्ष का प्रसंग उपस्थित हो तो उसका परिणाम संघ-कार्य की वृद्धि में होना चाहिए।
- राष्ट्र-सेवा में लीन व्यक्ति में यदि प्रसिद्धि की कामना जग गई तो फिर उसकी दृष्टि सेवा से हट जाती है।
- देश की सर्वांगीण उन्नति के लिए आत्मीयता से अपना सार सर्वस्व अर्पण करने के लिए सिद्ध नेता को हम स्वयंसेवक समझते हैं तथा संघ का लक्ष्य इस प्रकार के स्वयंसेवकों के निर्माण का है। इस संगठन में स्वयंसेवक और नेता में भेद नहीं है। हम सभी स्वयंसेवक हैं यह जानकर ही हम एक दूसरे को समान समझते हैं तथा सबसे समान रूप से प्रेम करते हैं। हम किसी प्रकार के भेद को प्रश्रय नहीं देते। धन तथा अन्य साधनों का आधार न होते हुए भी संघकार्य की इतने थोड़े समय में इतनी वृद्धि का यही रहस्य है।
- संघ बंद करना सरकार के लिए संभव नहीं। सरकार संघ बन्द नहीं कर सकती, क्योंकि यह तो अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना ही होगा। जिस दिन सरकार संघ को गैर-कानूनी बताकर बन्द करेगी उसी दिन नागपुर में दो सौ शाखाएं हो जाएंगी। संघ में जितने स्वयंसेवक हैं उतनी ही शाखाएं संघ बन्द करने के बाद निर्माण होंगी। मैंने यह सब सभी स्वयंसेवकों के भरोसे, उनके कर्तृत्व पर विश्वास रखकर कहा है।
- काशी विश्वेश्वर के पास मस्जिद तथा गंगा के घाट पर मीनार क्यों खड़ी है? हिन्दू

मन में तो यह प्रश्न ही नहीं पैदा होता और न उसकी पीड़ा ही उसे अनुभव होती है। मत भूलिये कि संघ इस अवस्था को बदलना चाहता है।

- सस्ती लोकप्रियता के पीछे लगकर लोकमत के प्रवाह में बहते जाना सरल है, किन्तु सच्चे नेता का काम तो यह है कि यदि स्वतः की सद्विवेक बुद्धि को लोकमत की बात नहीं जंचे तो लोकमत के प्रवाह के विरुद्ध खड़ा रहकर भी अपना मत छाती ठोककर जनता के सामने रखे। प्रवाह के साथ-साथ बहना नेता का नहीं, अनुयायी का लक्षण है। सच्चा नेता तो वह है जो अपने मत के अनुसार परिस्थिति को बदलकर लोकमत को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। नेतृत्व की कसौटी लोकमतानुवर्तित्व नहीं, लोकनियंत्रण है। अवसर पड़ने पर लोकमत के विरुद्ध जाने में भी न हिचकना ही सत्यनिष्ठा है।
- संघ ने चालू आंदोलन में भाग लेने का निर्णय अभी नहीं किया है। व्यक्तिशः जिस किसी को भाग लेना हो उसे अपने संघचालक की अनुमति से भाग लेने में कोई प्रतिवाद नहीं है। संघ के कार्य के लिए जो रीति पोषक हो ऐसी रीति से ही वह कार्य करें।
- संघ की स्थापना से जनवरी १९३० तक और तब से आज तक का सब हिसाब, इस प्रकार जांचकर ठीक-ठीक तैयार करना कि कोई भी आलोचक उसमें दोष न निकाल सके। कारण इसके आगे इस व्यवस्थितता की अत्यंत आवश्यकता है।
- परंतु मेरे इस काम के लिए अयोग्य होने के कारण मुझसे संघ का नुकसान होता है ऐसा यदि आपको लगे तो दूसरा योग्य मनुष्य इस स्थान के लिए ढूंढ निकालिये। आपकी आज्ञा से जितने आनन्द के साथ मैंने यह पद स्वीकार किया है उतने ही आनन्द से आपके द्वारा नियोजित व्यक्ति के हाथ में सब अधिकार-सूत्र देकर उसी क्षण से उसके आज्ञापालक स्वयंसेवक के नाते चलूंगा।

  कारण, मेरे लिए अपने व्यक्तित्व का मूल्य नहीं, संघ कार्य का मूल्य है, और संघ के हित के लिए कोई भी बात करने में मुझे किसी भी प्रकार का अपमान कभी प्रतीत नहीं होगा।

  संघचालक की आज्ञा का किसी भी परिस्थिति में स्वयंसेवक के द्वारा बिना नन्नु-नच किए पालन होना आवश्यक है तथा "नाक से भारी नथ" वाली स्थिति संघ में कभी न उत्पन्न होने देने में ही संघकार्य का रहस्य है।

  अतः स्वतः वह आज्ञापालन करना तथा दूसरे स्वयंसेवक से भी उसका पालन करवाना, प्रत्येक स्वयंसेवक का कर्तव्य है।
- राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ किसी भी व्यक्ति को गुरू न मानकर परम पवित्र भगवद्ध्वज को ही गुरू मानता है। व्यक्ति कितना भी महान हो फिर भी उसमें अपूर्णता रह

सकती है। इसके अतिरिक्त यह नहीं कहा जा सकता कि व्यक्ति सदैव ही अडिग रहेगा। तत्व सदा अटल रहता है। उस तत्व का प्रतीक भगवाध्वज भी अटल है।

- बताया हुआ काम करने के लिए हुआ करता है, उसका ढोल पीटने के लिए नहीं। यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि यदि अकेले मैंने काम से जी चुराया तो कौन सा बड़ा बिगड़ने वाला है। यह काम की सही पद्धति नहीं है।

केवल उदाहरण के नाते डॉक्टरजी के ये वचन यहां उद्धृत किए हैं। वैसे तो उनके मुख से निकलने वाला हर एक शब्द और शरीर द्वारा होने वाली हर एक क्रिया स्वयंसेवकों का मार्गदर्शन करने वाली थी कि हर क्षण किस-किस पथ्य का पालन करना कार्य-सिद्धि के लिए आवश्यक है।

* * * *

पूजनीय डॉक्टरजी ने ही २१ जून, १९४० के पश्चात् श्रीगुरूजी के रूप में अपना अभीष्ट कार्य आगे बढ़ाया।

दोनों के परस्पर संबंधों की कल्पना संत ज्ञानेश्वर के इन शब्दों में दी जा सकती है–

"हृदया हृदय एक जाले। ये हृदयींचे ते हृदयीं घातले।
द्वैत न मोडितां केलें। आपणारो से अर्जुन।।"

हृदय से हृदय एक हुआ। इस हृदय को उस हृदय में डाला।
द्वैत न मोडते हुए, किया अपने जैसा अर्जुन को।।

* * * *

माधव उवाच :–

- राष्ट्र पुनर्निर्माण की पूर्व नियोजित सर्वंकष योजना का जैसे-जैसे समयानुकूल उत्तरोत्तर उन्मीलन होने लगा वैसे-वैसे नवनवीन परिस्थितियों में मूल योजना तथा उसके लिए आधारभूत कार्यपद्धति का स्वरूप पूर्ववत् अक्षुण रहे, मनुष्य स्वभाव सुलभ दोषों से अस्पृश्य रहे, इस हेतु पूर्व चिंतित पथ्यों का जो नवनवीन विवेचन श्रीगुरूजी को करना पड़ा, उसका पूरा विवरण यहां संभव नहीं, अपेक्षित भी नहीं है। नमूने के तौर पर कुछ बातें यहां रखना पर्याप्त होगा। मनु महर्षि ने कहा है कि प्राकृतिक दुर्बलताओं के वशीभूत होकर मनुष्य स्वाभाविक रूप से व्यवहार करता है।

"प्रवृत्तिरेषा भूतानाम्–निवृत्तिस्तु महाफला।।"

इस कारण निवृत्ति के पथ्यों के विषय में बार-बार चेतावनी देनी पड़ती है।

- भले ही कुछ लोग अलग-अलग पार्टियों में हों, क्या वह लोग हिन्दू नहीं हैं? हां, वे

अवश्य हिन्दू हैं, अतएव हमें उनसे मिलना ही होगा। सब लोगों को अपना बनाना ही तो हमारा धर्म है।

- अभी कुछ दिन पूर्व हम लोगों ने जनसंपर्क किया। जनसंपर्क का कार्यक्रम अल्पमात्रा में हुआ। विचार करना चाहिए कि किसी समय जनसंपर्क करने के लिए हमें विशेष रूप से प्रयत्न करने की आवश्यकता क्यों पड़ती है? अपना नित्य का जनसंपर्क नहीं होता, इसलिए। नित्य का संपर्क रहना चाहिए, यह अपने कार्य का स्वरूप है।

अभियान (कॅम्पेन) शब्द मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। कॅम्पेन यानी तात्कालिक (टेम्परेरी) याने थोड़े समय के लिए चलाना और फिर उसे भुला देना। हमें जनता का संपर्क जीता-जागता, नित्य के लिए बनाकर रखना है। अभियान अपने लिए उपयोगी नहीं है।

हां, यदि विवेकानन्द शिला स्मारक जैसे अवसर पर धन इकट्ठा करने के लिए थोड़ा अभियान है, तो ठीक है; क्योंकि वह नित्य कार्य नहीं है। वह अनित्य है। पर संघ कार्य, संघ का जनसंपर्क कार्य तो नित्य है। इसलिए वहां अभियान की भावना रखनी ही नहीं चाहिए।

तात्कालिक हेतु लेकर काम करना (अभियान इत्यादि) मुझे पसंद नहीं, किसी तात्कालिक हेतु का, संघ के नित्य कार्य से कोई मेल नहीं।

किसी तात्कालिक हेतु को लेकर जैसे-जैसे काम होता है, वैसे-वैसे मनुष्य स्वयं को एक छोटी-सी दीवार के अंदर बंद करने लगता है। यानी कार्य का पंथ बनने लग जाता है। फिर बाहर देखने की, समाज के अंदर अन्य लोगों की ओर देखने की प्रवृत्ति कम होती है।.....अपना तो संगठन है। अपना कोई पंथ नहीं, सम्प्रदाय नहीं।

- प्रतिदिन शाखा में जाना, यह तो अपने यहां एक "मिनिमम लेव्हल" (न्यूनतम स्तर) के रूप में रखा गया है। मिनिमम लेव्हल न छोड़ते हुए अपने यथार्थ गुणों का उपयोग संघ के लिए करना है। शास्त्र में दो प्रकार के कार्य बताए गये हैं। एक नित्य कर्म और दूसरा नैमित्तिक कर्म। यदि कोई कहे कि नैमित्तिक कर्म मैं कर सकता हूं, नित्यकर्म नहीं, तो यह धारणा हानिकारक होगी।
- संघ के कार्य का अन्यान्य क्षेत्र के कार्य से वैसा ही सम्बंध है जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने अपना सम्बंध चराचर सृष्टि से बताया है।.....समझने के लिए यह जरा जटिल बात है। इसी प्रकार का अपना भी संबंध विभिन्न कार्यों से है कि इसमें से हम किसी में नहीं और वे हमारे में नहीं। इस आधार पर हमारी उनसे अपेक्षा क्या है? संघ के कार्य, सिद्धांत, अनुशासन, सुव्यवस्था, ध्येयवाद आदि श्रेष्ठ भावों की इन विभिन्न क्षेत्रों में अभिव्यक्ति होती रहे, यह अपेक्षा है। अपने-अपने क्षेत्र को संघकार्य के लिए भर्ती का क्षेत्र "रिक्रूटिंग ग्राउंड" बनाएं। उनका संघकार्य के पोषण एवं अभिवृद्धि की दृष्टि से उपयोग करें।
- सर्वसाधारण नियम है कि जो अत्यंत प्रिय और आवश्यक मूल्यवान वस्तु हमें लेनी है

उसके लिए जो कुछ मूल्य देना होता है उसे हम सर्वप्रथम स्थान देते हैं, और फिर बचे हुए धन में से अपनी अन्य कम आवश्यकता की वस्तुओं का क्रय करते हैं। अपने सामने जीवन की सर्वशक्ति लगाकर जिस लक्ष्य को प्राप्त करना है वह संघ-कार्य है। उसके लिए अपनी सर्वशक्ति लगाने की अपनी सिद्धता चाहिए।

- समाज संगठित करने के लिए उसके (शाखा के) दृढ़ आधार पर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपने विभिन्न गुणों का उपयोग करूंगा यह विचार हर एक स्वयंसेवक के मन में दृढ़ करना और उसको प्रोत्साहित करना आवश्यक है।
- अन्य क्षेत्रों में काम करते समय पालन करने के तीन पथ्य हैं–
  (१) अपने क्षेत्र में कार्य की रचना तथा विचारों का विकास संघ के सिद्धांतों-आदर्शों के प्रकाश में हो।
  (२) संघ में सिखाई हुई रीति-नीति और पद्धति को अपने-अपने क्षेत्र में प्रविष्ट किया जाय।
  (३) सामान्य स्वयंसेवक की तुलना में अधिक तत्परता से दैनंदिन, नित्य शाखा से सम्पर्क रखा जाये।
- संघ के स्वयंसेवक के नाते से विभिन्न क्षेत्र में काम करने वाले हम सभी के विचारों, भावनाओं एवं श्रद्धा का अधिष्ठान भी अधिक बलिष्ठ बना रहना चाहिए।
- एक ही राष्ट्र के लिए परंतु विभिन्न क्षेत्र में काम करने वाले हम लोगों को एक दूसरे के साथ मेल करके चलना है तथा एक राष्ट्रत्व का बोध अपने हृदय में जागृत रखना है। अपने विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा अपने साथ जो-जो लोग आते हैं उनको राष्ट्रभक्ति का योग्य संस्कार देने के लिए अपने संघ-कार्य की ओर आकृष्ट करना अपना धर्म है। लोगों के मन में किसी प्रकार की अन्यथा भावना उठने न देते हुए यह कार्य कुशलता से धीरे-धीरे करना है।
- किसी बड़े परिवार के कुछ युवक अनेक क्षेत्रों में यदि काम करनें के लिए जाएं, तो उनका कर्तव्य है कि अपने खर्च मात्र के लिए घर से पैसा मंगवाकर अपने पराक्रम से अधिकाधिक मात्रा में सम्पत्ति, समृद्धि व सम्मान प्राप्त करें, उसके द्वारा अपने कुल की प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य वृद्धि, श्रेष्ठत्व तथा प्रभाव बढ़ाएं। उसी प्रकार हम लोग भी विभिन्न प्रकार से चलने वाले इन कामों के विषय में सोचें कि अपना मूल कुल "संघ" है। उसकी सभी प्रकार से उन्नति होने के लिए जिस-जिस क्षेत्र में काम करेंगे, उस-उस क्षेत्र का उपयोग करते हुए अपने इस संघ-कार्य को समृद्ध करेंगे। इस कार्य का ही सब प्रकार से विस्तार और प्रभाव बढ़ायेंगे।
- हम स्वयंसेवक हैं। जिस प्रकार कहीं भी रखे गए अंगारे अपने आसपास ऊष्णता

फैलाते हैं, उसी प्रकार एक-एक अग्निपुंज के समान अपना प्रत्येक स्वयंसेवक हर क्षेत्र में जाकर अपने गुण, अपनी तेजस्विता, अपने व्यवहार-माधुर्य से प्रभाव उत्पन्न करने वाला चाहिए, अपने चारों ओर संघ के लिए योग्य वायुमण्डल तथा अत्यंत श्रद्धा का भाव उत्पन्न करने वाला चाहिए। इसके विपरीत यदि अन्य क्षेत्रों में पाई जाने वाली कई प्रकार की न्यूनताओं को हमने अपने अंदर आने दिया और वहां दिखाई देने वाली व्यक्तिगत ईर्ष्या और स्पर्धा का स्वयं को शिकार बनने दिया तो कहना पड़ेगा कि स्वयंसेवक का कर्तव्य हमने नहीं निभाया।

- यदि अन्य क्षेत्रों के वर्तमान गुणावगुणों को लेकर हम चलें तथा सोचने लगें कि संघ से अपना कोई सम्बन्ध नहीं, तब तो स्वयंसेवक के नाते किसी अन्य कार्य में जाना कदापि उपयोगी नहीं होगा।
- इसलिए अपने विभिन्न कार्यों में भी अपने मन का पूर्ण संतुलन रखकर मूलकार्य के प्रति अटूट श्रद्धा रखते हुए उन भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के कार्य का हम अपने इस मूल कार्य के परिपोषण के लिए अधिकाधिक मात्रा में उपयोग करें।
- अपने कुछ मित्रों से कहा कि राजनीति में काम करो। तो इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें उसके लिए बड़ी रुचि या प्रेरणा है। यदि, उन्हें राजनीति से वापस आने को कहा तो उसमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी। अपने को गंदगी उठाने को कहा तो गंदगी उठाना चाहिए। उसी में संघकार्य होगा। जहां रख दिया जाय वहीं काम करना चाहिए–"विदाउट रिजर्वेशन"। तभी कार्य करने की पात्रता उत्पन्न होती है।
- अपने कुछ स्वयंसेवक राजनीति में काम करते हैं। उन्हें कार्य की आवश्कयता के अनुरूप जलसे, जुलूस आदि करने पड़ते हैं। इन सब बातों का हमारे काम में कोई स्थान नहीं है। परंतु नाटक के पात्र के समान जो भूमिका ली उसका योग्य निर्वाह तो करना ही चाहिए। किन्तु इस नाटक की भूमिका से आगे बढ़कर कभी-कभी लोगों के मन में उसका अभिनिवेश उत्पन्न हो जाता है। यहां तक कि फिर इस कार्य में आने के लिए वे अपात्र सिद्ध हो जाते हैं। यह तो ठीक नहीं।
- संघ के अतिरिक्त अन्यत्र कार्य करने वालों की दिशा में मोड़ उत्पन्न न हों, सिद्धांतों में भी ढीलापन न आए तथा राष्ट्रीय विचारों की तीव्रता किंचित भी कम न हो, यह अत्यंत आवश्यक है।
- समग्र समाज को अपने स्नेह के, आत्मीयता के, ध्येयवाद के, नियंत्रण में अपने साथ लेकर चलने वाला प्रबल, संगठित, सामर्थ्यशाली, हिन्दू समाज यदि राष्ट्रव्यापी बनकर खड़ा रहा तो राजसत्ता नियंत्रित रहेगी। चाहे कोई भी दल राजसत्ता पर बैठे, परन्तु सबको प्रणाम यहीं करना होगा, जहां समाज की निःस्वार्थ सेवा मूर्तिमंत प्रकट हुई है। ऐसी स्थिति उत्पन्न करना है।

- तात्कालिक चुनावों की सफलता कार्य का मापदण्ड नहीं है। वास्तविक रूप से जनसाधारण के विचार परिवर्तन, उनका स्थायी होना, सच्चाई से विचारों पर दृढ़ रहना, "राष्ट्रीय" चारित्र्य युक्त होने के फलस्वरूप सामयिक भावनाओं की लहरों में न बहने की शक्ति रहना, आदि बातों में कितनी सफलता मिली है, यही विचारणीय है, ऐसा मुझे लगता है।"
- अन्य यूनियन के कुशल कार्यकर्त्ताओं से आत्मीयता के सम्बन्ध प्रस्थापित करो।
- कांग्रेसी आदि नामों से प्रसिद्ध अपने बन्धुओं को अपनाकर नगरपालिका में पूर्ण सहयोग का वातावरण निर्माण करें।
- राजनीति में रुचि लेने वालों या उसके अनुकूल विचार करने वालों की अपेक्षा अपना अनादिकाल से चलता आ रहा समाज जीवन और उसके आदर्शों को अपनाकर अपनी संस्कृति को जीवन में चरितार्थ करने वाले और इसी दृष्टिकोण को जनसाधारण के पास योग्य शब्दों में पहुँचाने की कामना करने वाले पुरुषों की संघ को अधिक आवश्यकता है।
- "सिख और हिन्दू" भेदभाव निर्माण करने वाले शब्द प्रयोगों का सर्वथा त्याग कर "हिंदू" शब्द में शैव, वैष्णावादि, जैन, बौद्ध, सिख, आर्यसमाज आदि सबका अन्तर्भाव है, इस तथ्य के अनुरूप ही बोलने-लिखने से सत्यानुकूल बरतने की दक्षता अपने सब कार्य करने वाले महानुभाव व्यवहृत करें।
- नये कार्य में कभी-कभी स्वार्थपरता, अहंकार, बड़प्पन की चाह, स्पर्धा, ईर्ष्यादि अवगुण, अन्य सबको हीन मानकर उनकी खिल्ली उड़ाने की अनिष्ट प्रवृत्ति आदि बातें पैदा होती हैं। स्वपक्ष का मंडन, दूसरों का खंडन आदि करते समय अनेक बार अपने अनजाने ये और ऐसे अनेक अवगुण हृदय में प्रवेश करके बढ़ने लगते हैं। तथापि आपके पूर्वायुष्य की संस्कार-निर्माण तथा दृढ़ीकरण की योजना से आपका नित्य, नियमित दैनिक सम्पर्क रहने से आप सुरिक्षत रहकर कार्यकर्ताओं का आचरण और आदर्श सार्वजनिक समझे जाने वाले कामों में भी कैसा शुद्ध रहता है, यह आप अपने व्यवहार से सिद्ध करेंगे, यह मुझे विश्वास है।
- परस्पर के दोषदर्शन की प्रवृत्ति स्वभाव सुलभ है, परंतु कार्य-पोषक नहीं। जो विषय मुझे सूचित किया गया है, वह योग्य दायित्व के साथ संबंधित काम करने वाले कार्यकर्ताओं के सामने खुले मन से, कटुता-वैमनस्य आदि निर्माण नहीं होगा, इस ढंग से रखा जाता, तो ठीक होता। संबंधित कार्यकर्त्ताओं को जान-बूझकर टालकर व्यवहार करने की प्रवृत्ति भी स्वाभाविक हो तो भी कार्य विघातक हो सकती है, यह नित्य ध्यान रखें।
- ग्रीष्म के परिणामस्वरूप कुछ स्थानों की शाखाएं बंद पड़ जाती हैं, ऐसा पुराना

अनुभव है। परन्तु इसका विशेष विचार किसी ने नहीं किया है। ..... इसलिए अभी से ध्यान रखकर ग्रीष्मकाल में ही नहीं, तो निरन्तर शाखाओं का दायित्व संभाल सकने वाले स्वयंसेवक बंधु स्थान-स्थान पर रहेंगे, ऐसा करना आवश्यक प्रतीत होता है।

- जो उद्देश्य हम प्राप्त करना चाहते हैं उसे हम राजनीति द्वारा अथवा सत्ता के द्वारा पा सकेंगे ऐसा संभ्रम हमारे मन में थोड़ा भी न रहे। अपना कार्य राजनीति को उच्छृंखल न होने देने के लिए उस पर अंकुश रखने वाली शक्ति के निर्माण का कार्य है। परंतु उसके लिए शर्त यह है कि हम अपने कार्य को खूब बढ़ाएं और हम सब अपने निजी गुणों का उपयोग कार्य-वृद्धि में करें। और अभिमान रहे कार्य की श्रेष्ठता का, न कि अपने व्यक्तिगत गुणों का।

- I have had to write this because on my way I had a very unpleasant experience. At Vindhyachala Station, there was such shouting of 'Jai' and other exuberance of undisciplined enthusiasm that I did not feel quite happy and our worker in that district Shri..... was visibly affected by the whole affairs. He could not possibly control it. Anyway, we have to gradually guide peoples love and enthusiasm into proper channels. No use getting merely upset or annoyed, workers concerned may be intimated about this.

(मुझे यह इसलिए लिखना पड़ा क्योंकि रास्ते में मुझे एक बहुत ही अप्रिय अनुभव हुआ था। विन्ध्याचल स्टेशन पर "जय" के इतने जोर से नारे लगे, शोरगुल हुआ तथा अनुशासनहीन उत्साह कुछ इस प्रकार फूट पड़ा कि मुझे यह देखकर प्रसन्नता नहीं हुई और उस जिले में हमारे कार्यकर्त्ता श्री ..... पर भी पूरे मामले का असर पड़ा, जो उनके चेहरे पर देखा जा सकता था। संभवतः वे यह सब नियंत्रित नहीं कर पाए। बहरहाल, हमें लोगों के प्रेम और उत्साह को धीरे-धीरे उचित स्वरूप में ढालना चाहिए। सिर्फ परेशान होने या गुस्सा करने से कोई लाभ नहीं है। हां, सम्बंधित कार्यकर्त्ताओं को इस बारे में बता देना चाहिए।)

- .....As you know my frame of mind, I would prefer to remain a small stone dug and pressed in the foundation of our great National edifice.

(.... .... जैसा कि आप मेरी मनःस्थिति समझते हो, मैं अपने महान राष्ट्रीय भवन की नींव का पत्थर बना रहना पसन्द करूंगा।)

• .....Especially in the present atmosphere of elections eating into the basic solidarity of our people and driving wedges to divide one part from another, effecting numerous cleavages and creating feelings of mutual distrust and hostility. In this vicious atmosphere we have to take particular care that our workers are not a prey to the prevailing poisonous atmosphere and also that our work grows in extent and strength so as to be able to re-educate the minds of the people into a firm belief in the Truth of our National Solidarity.

• (.....विशेषकर चुनावों के वर्तमान वातावरण में, जो हमारे नागरिकों की आधारभूत एकता को ही नष्ट किए दे रहे हैं और एक हिस्से को दूसरे से विभाजित करने के लिए दरारें पैदा कर रहे हैं, जिसके कारण अनेक मतभेद तथा परस्पर अविश्वास और शत्रुता पैदा हो रही है, इस विषैले वातावरण में हमें यह विशेष सावधानी बरतनी है कि हमारे कार्यकर्ता इस विषैले माहौल के शिकार न बनें और यह भी कि हमारे कार्य की व्यापकता और शक्ति में वृद्धि होती रहे ताकि इस राष्ट्रीय एकता के सत्य में अचल निष्ठा हेतु लोगों को पुनः संस्कारित (दीक्षित) कर सकें।

- इसलिए दिन-प्रतिदिन सुसंस्कारों का आदान-प्रदान करना, स्वयं अनुकूल वायुमण्डल निर्माण करके अन्य लोगों को भी संस्कार देना, इसी में से शाखा का स्वरूप निर्धारित हुआ। दिन-प्रतिदिन एकत्र जीवन, स्नेहपूर्ण व्यवहार आदि की शिक्षा देने वाले कार्यक्रम, अनुशासन, प्रार्थना के रूप में राष्ट्रचिंतन, हृदय में गहराई तक भावना का आरोपण हो सके इस तरह का आवाहन, यह नित्य करते रहने की योजना निरंतर चलाना, संघटन की दृष्टि से आवश्यक ऐसी रचना डॉक्टरजी ने की। कार्य योजना का यह सम्पूर्ण मर्म हमने समझना चाहिए।

* * * *

ब्रह्मलीन होने के पर्याप्त समय पूर्व पूजनीय श्रीगुरूजी आगामी घटनाक्रम की कल्पना कर चुके थे।

सन् १९७३ की प्रतिनिधि की बैठक के समारोप का उनका भाषण उसी मानसिक पृष्ठभूमि पर दिया गया। उनका वह अन्तिम सार्वजनिक भाषण था। उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन के अनुभवों तथा निष्कर्षों का निचोड़ उन्होंने इस बिदाई के भाषण में सबके सामने रखा था। अपने अन्तिम संदेश का समारोप श्रीगुरूजी ने इन शब्दों में किया था–"साथ ही हमें ध्यान रखना चाहिए कि शाखा के बिना हम भिन्न-भिन्न कार्य नहीं कर पाएंगे। जहां

अपनी शाखा अच्छी प्रकार से चलती है वहां कोई भी कार्य उठाया तो उसे हम निश्चयपूर्वक सफल कर सकते हैं। अतः संघशाखा के कार्यक्रम, उसकी आचारपद्धति, स्वयंसेवक का व्यवहार, स्वभाव तथा उनके गुणोत्कर्ष आदि की ओर हम ध्यान दें और उनका प्रसार तथा दृढ़ीकरण करने का एकाग्रचित्त से प्रयत्न करें। इतना यदि हम करेंगे तो सब क्षेत्रों में हम लोग विजय प्राप्त करेंगे और जितना यह कार्य सुदृढ़ता से चलेगा और उसे हम एक अन्तःकरण से करेंगे, उतनी अपने लिए सर्वदूर "विजय ही विजय" है, ऐसा मैं पूर्ण विश्वास से कहता हूं।"

—दत्तोपंत ठेंगड़ी